2 नवम्बर 2013, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-32 / 2012-14

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के व्याख्यान प्रतिदिन अब आधे घंटे

जी-जागरण पर

प्रतिदिन प्रातः 6.30 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 36, अंक : 15 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

नवम्बर (प्रथम), 2013 (वीर नि. संवत्-2539) सह-सम्पादक : **डॉ. संजीवकुमार गोधा** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

शिलान्यास महोत्सव संपन्न

(1) सोनागिर (म.प्र.) : यहाँ श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन ब्रह्मचारी, वृद्धाश्रम ट्रस्ट द्वारा बनाये जा रहे मुमुक्षु निवास साधना केन्द्र का दिनांक 17 व 18 अक्टूबर 2013 को पंचपरमेष्ठी विधानपूर्वक शिलान्यास महोत्सव संपन्न हुआ।

इस अवसर पर ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना एवं पण्डित प्रदीपजी झांझरी उज्जैन के प्रवचनों का लाभ मिला।

शिलान्यास कार्यक्रम की अध्यक्षता श्री मुकेशजी जैन सुपुत्र स्व. श्री विनोदचन्दजी सर्राफ ग्वालियर ने एवं ध्वजारोहण श्री चक्रेशकुमार राजेशकुमार जैन मैसर्स बाबूलाल चक्रेशकुमार अशोकनगर ने किया।

भूमिशुद्धि कलश विराजमानकर्त्ता श्रीमती बबीता जैन धर्मपत्नी मुकेशजी जैन ग्वालियर, श्री इन्द्रसेन जैन भिण्ड एवं श्रीमती अर्चना नरेश जैन ग्वालियर थे।

इस मुमुक्षु निवास साधना केन्द्र में आचार्य कुन्दकुन्द स्वाध्याय भवन, ब्रह्मचारी मुमुक्षु निवास, श्रावक मुमुक्षु निवास, शुद्ध आहारशाला एवं औषधालय का निर्माण प्रस्तावित है। पंचपरमेष्ठी विधान के मंगल कलश विराजमानकर्त्ता श्रीमती बीना धर्मपत्नी पदमचन्दजी सर्राफ मुरार-ग्वालियर थे।

विधि विधान के समस्त कार्य ब्र. महेन्द्रजी इन्दौर एवं ब्र. नन्हे भैया सागर द्वारा संपन्न कराये गये। संपूर्ण कार्यक्रम ब्र. कैलाशचंदजी 'अचल' एवं ब्र. सुमतप्रकाशजी खनियांधाना के निर्देशन में संपन्न हुआ।

कार्यक्रम का संचालन श्री कौशलकिशोरजी जैन भिण्ड ने एवं आभार प्रदर्शन श्री चन्दूभाई बांसवाड़ा ने किया।

(2) कोटा (राज.) : यहाँ इन्द्रविहार स्थित सीमंधर जिनालय में पाठशाला भवन का शिलान्यास समारोह पंचबालयति विधानपूर्वक दिनांक 11 से 13 अक्टूबर तक संपन्न हुआ।

इस अवसर पर डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी के प्रवचनों का लाभ मिला।

दिनांक 11 अक्टूबर को आचार्य धरसेन दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के छात्रों द्वारा 'अनेकान्त व स्याद्वाद' विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया। गोष्ठी के अध्यक्ष डॉ. उत्तमचंदजी सिवनी एवं मुख्य अतिथि डॉ. आर.के. जैन विदिशा थे। कार्यक्रम में श्री प्रेमचन्दजी बजाज, पण्डित रतनचंदजी चौधरी, पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री एवं पण्डित सौरभजी शास्त्री कोटा भी उपस्थित थे। सभा का संचालन अभिनय शास्त्री (शास्त्री अन्तिम वर्ष) ने एवं आभार प्रदर्शन पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री कोटा ने किया।

दिनांक 12 अक्टूबर को पाठशाला के बच्चों द्वारा सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये गये।

विधि-विधान के समस्त कार्य ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री दिल्ली के निर्देशन में संपन्न कराये गये।

महाविद्यालय की गोष्ठी संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 1 सितम्बर को रात्रि 9 बजे **'धर्म के दशलक्षण'** विषय पर शास्त्री वर्ग की गोष्ठी आयोजित की गई। जिसकी अध्यक्षता पण्डित राजेश कुमारजी शास्त्री शाहगढ ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में प्रवीण जैन अमरमऊ (शास्त्री तृतीय वर्ष) एवं अंकुर जैन धार रहे।

आभार प्रदर्शन व ग्रन्थ भेंट पण्डित सोनूजी शास्त्री ने किया।

दिनांक 29 सितम्बर को **'सप्ततत्त्व'** एक विचार गोष्ठी आयोजित की गई। जिसकी अध्यक्षता श्रीमती कमला भारिल्ल ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में निकुंज जैन खड़ैरी कनिष्ठ उपाध्याय एवं अर्पित जैन ललितपुर वरिष्ठ उपाध्याय रहे। गोष्ठी का मंगलाचरण अनेकान्त शास्त्री रहली कनिष्ठ उपाध्याय ने एवं आभार प्रदर्शन पण्डित अनेकान्तजी शास्त्री ने किया।

गोष्ठी का संचालन नीशू जैन एवं आशीष जैन शास्त्री तृतीय वर्ष ने किया।

दिनांक 20 अक्टूबर को **'जैनधर्म के आलोक में ध्यान'** विषय पर गोष्ठी आयोजित की गई। जिसकी अध्यक्षता डॉ. कुसुम जैन (पूर्व प्राचार्या-महारानी कॉलेज) जयपुर ने की।

गोष्ठी के विशिष्ट अतिथि के रूप में ब्र. यशपालजी जैन जयपुर उपस्थित थे।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में उपाध्याय वर्ग से वैभव जैन गोरमी (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं शास्त्री वर्ग से निखिल जैन मुम्बई (प्रथम वर्ष) रहे।

गोष्ठी का संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष के विद्यार्थी जिनकुमार जैन चेन्नई जैन एवं अखिलेश जैन शाहगढ ने किया। ग्रन्थ भेंट एवं आभार प्रदर्शन पण्डित सोनूजी शास्त्री जयपुर ने किया।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो - वीडियो प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें-

वेबसाईट - www.vitragvani.com

संपर्क सूत्र-श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई

Ph. : 022-26130820, 26104912, E-Mail - info@vitragvani.com

सम्पादकीय –

वही ढाक के तीन पात

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

भौतिकदृष्टि से भले ही परदेश लोगों को सुखद लगता हो, पर आध्यात्मिक उन्नति के लिए वहाँ की स्थिति बिल्कुल भी अनुकूल नहीं है, वीतरागी साधु-सन्तों का आवागमन तो भौतिकवादी भोगप्रधान दूरस्थ देशों में संभव ही नहीं है, युवापीढ़ी के विद्वान भी वहाँ की चकाचौंध में चौंधियाकर वहीं के होकर रह जाते हैं और अपनी अर्जित विद्वता से हाथ धो बैठते हैं। वहाँ धन संचित करने की धुन में वे धर्म-ध्यान से वंचित हो जाते हैं। यदि हम बुजुर्ग विद्वानों की बात करें तो अधिकांश तो शारीरिक दृष्टि से इतने दुर्बल हो जाते हैं कि चाहकर भी अपनी सेवायें नहीं दे पाते। जो देते भी हैं उनके वे उपदेश भी **ऊंट के मुँह में जीरे** की कहावत को ही चरितार्थ करते हैं। क्या होता है एक वर्ष में ४-५ प्रवचनों से। अतः उत्तम तो यही है कि जहाँ भरपूर लाभ मिले वहाँ ही स्थाई आवास और आजीविका के साधन जुटाना चाहिए।

माँ ने विराग को फोन पर भी बहुत समझाया कि ''बेटा ! यदि तुझे यह दुर्लभ मनुष्य जन्म सार्थक करना हो तो तू स्व-देश वापिस आ जा; परन्तु जब तक स्वयं की होनहार भली नहीं होती तब तक माँ की तो बात ही क्या, भगवान की बात भी समझ में नहीं आती। और संसार की उलझनों में अटके रहने के लिए कोई न कोई बहाना तो मिल ही जाता है। विराग को भी वहाँ रहने को अपना कैरियर बनाने का बहाना पर्याप्त था।

उसकी पत्नी चेतना को भी कंप्यूटर इंजीनियर होने से अच्छी सर्विस मिल गई थी, इस कारण वह भी स्वदेश नहीं लौटना चाहती थी। वैसे स्वदेश लौटने के विचार को बल मिलने का एक प्रबल कारण यह बन रहा था कि परदेश में ही जन्मी एवं भारतीय भाषा और संस्कृति से सर्वथा अपरिचित उसकी इकलौती बेटी अनुपमा अब विवाह योग्य हो चली थी। पाश्चात्य-संस्कृति में पली-पुसी होने और उसी वातावरण में निरन्तर रहने से कालेज में साथ-साथ पढ़ने वाले कुछ ऐसे लड़कों से उसकी मित्रता हो गई जो कभी भी उसके चरित्र को कलंकित कर सकते थे। उनका मिलना-जुलना और घर आना-जाना रोकना भी संभव नहीं था। अतः एक दिन विराग और चेतना को यह निर्णय लेने के लिए बाध्य होना पड़ा कि ''अब तो परदेश प्रवास छोड़ना ही होगा, अन्यथा हम अपनी-लाड़ली बेटी से ही हाथ धो बैठेंगे।''

आत्मकल्याण करने एवं परलोक सुधारने के लिए भले ही कोई तत्काल ऐसे निर्णय न ले पाये; पर संतान का मोह कुछ ऐसा ही होता है कि उनके लिए जो भी करना पड़े, लोग करते हैं।

जब तक वह परदेश में रहा तो वहाँ भी माँ और गुरुजनों की भावनाओं का ध्यान रखते हुए धर्माचरण तो करता रहा, परन्तु उसे अभी तक उस धर्माचरण के प्रयोजन का कुछ पता नहीं था। यदि उससे कोई पूछले कि तुम यह सब क्यों करते हो? क्या लाभ मिला है तुम्हें अब तक उस धर्माचरण के पालन से? और उसका वास्तविक फल क्या है? तो उनके, क्या-क्यों-किसलिए; आदि प्रश्नों का उसके पास कोई संतोषजनक समाधान नहीं था। बस, माँ और गुरुजनों ने जैसा/जो करने को कहा; आँख मीचकर उनके निर्देशों का पालन करता आ रहा था।

फिर क्या था ह्न दो-चार घंटे विचार-विमर्श करके उन दोनों ने स्वदेश लौटने का निर्णय कर लिया और छह माह के अन्दर वापिस स्वदेश आ भी गये। एक दिन उसने स्वयं सोचा – ''अभी तक उसे वह धर्म हाथ नहीं लगा, जिसके फल में कषायें कृश होती हैं, विषय वासनायें क्षीण होतीं हैं, राग-द्वेष की आग बुझती है, परपदार्थों में इष्टानिष्ट कल्पनायें नहीं होतीं। उसने सुना था कि धर्म के फल में यह सब होता है, पर उसमें अब तक ऐसा कुछ नहीं हुआ।

वह सोचता है – ''अभी भी बात-बात में क्रोध आ जाता है, छोटी-छोटी बातों से मुझे मान-अपमान की फीलिंग होने लगती है, यश-प्रतिष्ठा का लोभी भी मैं कम नहीं हूँ, इस हेतु जो भी दाव-पेंच करना पड़ते हैं, करने में पीछे नहीं रहता।

मैंने यह भी सुना है कि धर्मरूपी वृक्ष से निराकुल सुख और आत्मशान्ति के ऐसे मधुर फल प्राप्त होते हैं जिन्हें पाकर जीव अनन्त काल तक के लिए अनन्त सुखी हो जाता है। पर मुझे वे सुख-शान्ति के फल आज तक प्राप्त नहीं हुए, जबकि मैं धर्म के लिए पूर्ण समर्पित हूँ। मेरी यही एक ज्वलन्त समस्या है, एतदर्थ मुझे और क्या करना होगा? यह प्रश्न उसके सामने ज्यों का त्यों खड़ा है।

मेरे साथ तो अब तक वही 'ढाक के तीन पात' वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। जिसतरह दिन-रात पानी बरसने पर भी ढाक की एक टहनी में तीन पत्ते ही निकलते हैं, उसी तरह इतना सब कुछ करते हुए भी मेरे पल्ले भी निराकुल सुख-शान्ति के नाम पर

विशेष कुछ भी नहीं पड़ रहा है। वैसे ही मोह-माया, वैसी ही कषायें, वही विषय वासना कहीं कोई भी फर्क तो नहीं पड़ रहा है। आखिर ऐसा क्यों होता है?

मैं तो छोटे-छोटे प्रतिकूल प्रसंगों में आज भी आग बबूला हो जाता हूँ। बदले की भावना इतनी प्रबलरूप ले लेती है कि मरने-मारने को भी तैयार हो जाता हूँ।

मुझे इस स्थिति में देखकर लोग कहते हैं 'इन धर्मात्माओं से तो हम अधर्मात्मा ही अच्छे हैं, भले धर्म का ढोंग नहीं करते; पर क्रोधावेश में ऐसे बेकाबू भी नहीं होते।' वे कहते हैं - 'ये कैसे क्षमाधर्म के धारक हैं इन पर तो 'मुँह में राम बगल में छुरी' वाली कहावत चरितार्थ होती है। 'उत्तम क्षमा-क्षमा' कहते रहते हैं और क्रोध करते रहते हैं।

मैंने तो एक बार यह भी सुना था कि 'धर्म साधना से पाप के बीजरूप परिग्रह आदि वैभव के सुखद संयोगों की ममता टूटकर समता भाव जागृत हो जाता है। आत्मध्यान और तत्त्व चिन्तन में चित्त एकाग्र हो जाता है। राग-द्वेष रहित होकर वीतरागता की ओर अग्रसर होते हैं; परन्तु मेरे जीवन में ऐसा कुछ भी तो नहीं हुआ। इसकारण आज भी वह प्रश्न ज्यों का त्यों निरुत्तरित है।

कैसा होगा वह धर्म का स्वरूप, जिससे जन्म-जरा, भूख, प्यास, रोग, शोक, मद, मोह आदि दोषों का अभाव होकर वीतराग भाव जागृत होता है? आत्मा-परमात्मा बन जाता है। आत्मा अतीन्द्रिय, निराकुल सुख सरोवर में निमग्न होकर सदैव परम शान्ति और शीतलता का अनुभव करता है। धर्माचार्य तो यह कहते हैं कि 'धर्म से तो समता भाव के साथ त्रैकालिक स्थाई आनन्द का झरना झरता रहता है।' मैं माँ के सान्निध्य में रहकर उस धर्म को समझने का प्रयास करूँगा।''

इसके विपरीत जिसे मैं जीवन भर चारित्र का विशालवृक्ष समझता रहा और उससे सुखद फल पाने की प्रतीक्षा करता रहा, वह तो वस्तुतः चारित्र ही नहीं है, तो उसमें समतारूपी फल मिलेगा ही कहाँ से? वह तो सामान्यश्रावक का सदाचार है, जो दूर से देखने पर चारित्र जैसा ही दिखाई देता है, इसी कारण बहुतों को ऐसा भ्रम हो जाता है कि यही धर्म है। मैं भी उस भ्रम में भ्रमित हो गया था।''

वैसे लौकिक दृष्टि से तो वह धर्माचरण भी यथास्थान आवश्यक है। उसका फल दुर्व्यसनों से और दुराचार से बचना है, सो वह भी उनसे तो बचा ही रहा। जिसप्रकार कोई बड़े नींबू और नारंगी के अन्तर को न जाने और दोनों को एक ही माने तो वह लोक की दृष्टि से मूर्ख ही माना जाता है। तथा जैसे कोई एरण्ड और पपीहा के पेड़ में बाहर से समानता देखकर एरण्ड को ही पपीता मान ले अथवा पपीता के पेड़ को ही एरण्ड समझ ले तो वह भी मूर्ख ही माना जाता है, उसी प्रकार यदि कोई शुभभाव रूप धर्माचरण को शुद्ध (वीतरागता) रूप धर्म समझ ले तो यह तो उसकी भूल ही है। यही स्थिति चारित्र और सदाचार की है। सदाचार को चारित्र नहीं माना जा सकता।

विराग को विचार मग्न देख माँ ने पूछा - ''अरे ! तू यहाँ अकेला बैठा बैठा क्या सोच रहा है?''

विराग बोला - ''माँ ! धरम-धरम सब कहते हैं, पर धर्म के मर्म को बहुत कम व्यक्ति जानते हैं। मैं स्वयं अभी तक धर्म का मर्म नहीं जान पाया, भले ही सब लोग मुझे धर्मात्मा कहते हैं, क्योंकि वे मेरी मात्र बाहरी धार्मिक क्रियायें ही देखते हैं, मेरी अन्तरंग प्रवृत्ति कैसी है? इसका मेरे सिवाय अन्य किसी को क्या पता?' मैं यही सब सोच रहा हूँ।''

माँ ने कहा - ''यह तो बहुत अच्छी बात है। तेरा सोचना बिल्कुल सही है। जब तूने अपनी भूल समझ ली और हर कीमत पर सत्यधर्म पाना ही है यह ठान लिया है तो तुझे धर्म का मर्म शीघ्र समझ में आनेवाला ही है। इसमें जरा भी संदेह नहीं है।'' ●

शोक समाचार

1. जोधपुर (राज.) निवासी श्री मोतीचन्दजी लुहाड़िया का दिनांक 19 अक्टूबर को प्रात:काल 78 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आप गुरुदेवश्री के तत्त्वज्ञान से निरन्तर जुड़े रहे, जोधपुर में लगभग विगत 40 वर्षों से प्रतिदिन आपके यहाँ दैनिक स्वाध्याय चलता था। टोडरमल स्मारक से चलने वाली समस्त गतिविधियों में आपका सक्रिय सहयोग रहता था। आपकी स्मृति में परिवार की ओर से 11 हजार रूपये की राशि टोडरमल स्मारक ट्रस्ट हेतु प्राप्त हुई।

2. बोरीवली-मुम्बई निवासी श्री जयन्तीभाई डायालाल शाह का दिनांक 3 अक्टूबर को 69 वर्ष की आयु में शांतपरिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपकी गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के प्रति अनन्य भक्ति थी।

3. भोपाल (म.प्र.) निवासी इंजी. श्री अयन कुमार जैन (सेवानिवृत्त उपायुक्त म.प्र. गृह निर्माण मण्डल, भोपाल) का दिनांक 5 अक्टूबर को वैराग्यभावनापूर्वक देहावसान हो गया। आप नियमित स्वाध्यायी थे। आप स्मारक द्वारा संचालित शिविर, साहित्य प्रकाशन, प्रचारादि गतिविधियों में सक्रिय योगदान देते थे।

दिवंगत आत्मायें चतुर्गति के दु:खों से छूटकर शीघ्र ही अनंत सुख को प्राप्त हों - यही मंगल भावना है।

वैराग्य किसे कहते हैं : वैरागी कौन ?

– परमात्म प्रकाश भारिल्ल

''यह भी अच्छा नहीं लगता, वह भी अच्छा नहीं लगता, कुछ भी अच्छा नहीं लगता, कहीं अच्छा नहीं लगता''

इसे तू वैराग्य समझ बैठा है और अपने आप को वैरागी धर्मात्मा, यह तो तेरी भूल है, यह तो आर्तध्यान है, यह तो द्वेष का एक रूप है, यह तो पाप है। तू भ्रम से पाप को धर्म समझ बैठा है।

पहिले तुझे इनमें आनंद भासित होता था, तब तू इनसे राग करता था, वह परिग्रहानन्दी या विषयानन्दी रौद्र ध्यान था, वह भी पाप ही था।

तू एक पाप छोड़कर दूसरे पाप में लीन हो जाता है और अपने आपको धर्मात्मा मानने लगता है।

वैराग्य न तो द्वेष मूलक है और न ही राग मूलक।

अरे भाई ! वैराग्य नाम ही उसका है जिसमें राग का अभाव है, जिसमें राग नहीं है।

यदि वैराग्य में राग का अभाव है तब द्वेष का सद्भाव कैसे हो सकता है?

हमारा भी जवाब नहीं, हम सामान्य राग–द्वेष से बढकर, राग और द्वेष की तीव्रता वाले वैरागी बन बैठते हैं

अरे भाई ! यह (पदार्थ या व्यक्ति) अच्छा है, वह बुरा है, यह निर्णय करने की पंचायत तुझे किसने सौंपी है ? वह जो है, जैसा है, अपने आप में है। वह तू नहीं है, बस !

तू उस पर अपनी विकृत दृष्टि डालता ही क्यों है ?

मैं कहूँ कि देखो ! उसने कितनी सुन्दर शर्ट पहिन रखी है, कितनी जँच रही है उस पर, वह कितना सुन्दर दिख रहा है और वो कहे ''नहीं, बिलकुल नहीं, मुझे तो यह रंग बिलकुल अच्छा नहीं लगता और अब यह डिजाइन भी फैशन में नहीं रहा, यह तो पुराना पड़ चुका है, यह तो 2 महिने पहिले चलता था।

अरे भाई ! वह तुम्हारी अदालत में आया कब है अच्छे–बुरे का फैसला करवाने को ?

उसने तो तन ढकने के लिए वस्त्र पहिन लिये, जो उपलब्ध हुए पहिन लिए, हो न हो उसे अच्छे–बुरे का विकल्प ही न आया हो ?

क्या वस्त्र का वस्त्र होना पर्याप्त नहीं है ?

क्या वस्त्र का अच्छा या बुरा होना जरूरी है ?

वस्त्र का प्रयोजन क्या है ? तन ढंकना या अच्छा–बुरा होना ?

उस पर तेरी यह राग या द्वेष भरी (विकृत और गंदी) दृष्टि, क्या तेरा अपराध नहीं है ?

क्या यह उस पर आक्रमण नहीं है, क्या यह उसके स्वरूप का घात नहीं है?

और फिर यदि तू यही सब करता रहेगा तो अपना काम कब करेगा ? अपने को कब देखेगा, परखेगा ? अपना विचार कब करेगा, तेरा कल्याण कैसे होगा ? अब तक भी यही सब करता आया है, गोरखधंधा और अब भी इसी में उलझा हुआ है।

''यही मैं नहीं, यह मेरा नहीं '' बस ! यह ज्ञान मात्र एक सज्जन और ईमानदार व्यक्ति के लिए किसी से विमुख होने के लिए पर्याप्त है।

''वह है तो पर, पर है बहुत अच्छा''

अरे जब वह पर है तब तुझे उससे प्रयोजन ही क्या है ?

उसके प्रति तेरा यह रागभाव और राग भरा कथन दोनों तेरी अनैतिकताएं हैं।

यूं समझ नहीं आयेगा, यूं आसानी से स्वीकार भी नहीं होगा, एक उदाहरण देना होगा।

किसी महिला को भ्रमवश अपनी पत्नी समझकर उसकी ओर उन्मुख हुआ कोई सज्जन पुरुष कब तक उसके प्रति रुचिवंत रहेगा ? जब तक कि उसे सत्य का ज्ञान न हो, बस !

ज्यों ही उसे सत्य का ज्ञान होगा वह तुरंत उससे विमुख हो जाएगा, हो ही जाना चाहिए।

अब यदि कोई न हो तो ?

यदि वह कहे कि न सही मेरी धर्मपत्नी, पर यह है बहुत सुन्दर, है बहुत सुशील, है बहुत व्यवहार कुशल, है बहुत अच्छी। या इसके विपरीत कि –''कितनी कुरूप, अभद्र और बेहूदी है ये''

क्या कहेंगे इसे आप ?

उसकी गुण ग्राहकता ? या अनधिकार चेष्टा, अनैतिकता, अपराध ?

तो वह कौन है, कैसा व्यक्ति है वह, उसे आप क्या समझेंगे, क्या कहेंगे, उसके साथ कैसा व्यवहार करेंगे ?

उसे अनैतिक ही मानेंगे न, उसकी निन्दा ही करेंगे न, समाज और कानून उसे दण्डित ही तो करेंगे न ?

तो क्या अब (उसे पर जानने के बाद) उससे (उक्त महिला से) घृणा करने लगें, द्वेष करने लगें, उसकी निन्दा करने लगें ? क्या करें ? क्या जरूरत है घृणा या द्वेष करने की ?

क्या यह संभव नहीं कि तू कुछ भी न करे।

बस अपने उपयोग को वहां से हटाले, उससे विमुख हो जा।

क्या किसी से विमुख होने के लिए उससे द्वेष जरूरी है ?

जगत में ऐसे भी तो अनेक (अनंत) पदार्थ हैं जिन्हें तू जानता ही नहीं, तू उनसे विमुख भी बना हुआ है और तुझे उनसे द्वेष भी नहीं है।

बस ! जो यह व्यवहार तू उस महिला के साथ करेगा जो तेरी नहीं है, तेरी धर्मपत्नी नहीं है, एक ऐसे पदार्थ के साथ करता है जिसे तू जानता नहीं है वही व्यवहार ऐसे पदार्थ के साथ भी तो हो सकता है जिसे तू जानता है।

यानि कि तू किसी पर पदार्थ को पर जानकर उससे राग या द्वेष किये बिना भी तो उससे अलिप्त रह सकता है न ?

इस वृत्ति में न तो राग है और न ही द्वेष।

(यहाँ भूमिका के योग्य आंशिक वीतरागता की बात है)

(शेष पृष्ठ 8 पर ...)

तत्त्वार्थमणीप्रदीप-मनीषियों की दृष्टि में ...

महाशास्त्र **तत्त्वार्थसूत्र** अपर नाम **मोक्षशास्त्र** आचार्य उमास्वामी की अमर कृति है। डॉ. भारिल्ल की लेखनी से प्रसूत यह **तत्त्वार्थमणिप्रदीप** नामक कृति उसी तत्त्वार्थसूत्र महाशास्त्र की सरल-सुबोध भाषा टीका है।

इस टीका ग्रंथ में वे सब बातें तो हैं ही; जो तत्त्वार्थसूत्र पर लिखे अद्यावधि उपलब्ध सत्साहित्य में हैं। अनेक ऐसे प्रमेय भी प्रस्तुत हुए हैं, जिनके बारे में अभी मंथन नहीं हो पाया है। अन्यत्र दुर्लभ आध्यात्मिक पुट एवं आत्मोन्मुखी पुरुषार्थ की प्रेरणा भी इसकी अपनी विशेषता है।

- रतनचन्द भारिल्ल, संपादक-जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक)

● **समन्वय वाणी (पाक्षिक), जयपुर, १६ अक्टूबर, २०१३, वर्ष ३३, अंक २०**

डॉ. भारिल्ल की नवीन कृति **'तत्त्वार्थमणिप्रदीप'** महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र की सरल-सुबोध टीका है। अध्यात्मरस से भरपूर इस टीका ग्रन्थ में वह सबकुछ है, जिसकी आवश्यकता एक सामान्य जैनी को जैनदर्शन का परिचय प्राप्त करने के लिये आवश्यक है।

इस कृति का समादर न केवल मुमुक्षु समाज में, अपितु सम्पूर्ण जैन समाज में होगा; क्योंकि यह कृति सभी के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

- अखिल बंसल, संपादक

● **डॉ. राजेन्द्रकुमार बंसल, अमलाई; उपाध्यक्ष अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद्**

महाशास्त्र तत्त्वार्थसूत्र पर संस्कृत व हिन्दी भाषा में अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं; लेकिन विद्यमान परिप्रेक्ष्य में ऐसी टीका की आवश्यकता अनुभव की जाती रही, जिसमें अध्यात्म का भी समावेश हो। इस सन्दर्भ में डॉ. भारिल्ल की यह **'तत्त्वार्थमणिप्रदीप'** टीका न केवल मोक्षार्थियों को, अपितु इतर पाठकों को भी दीपस्तंभ का काम करेगी।

विषय विवरण में अन्य टीकाओं/विद्वानों के मतों का समावेश कर आगमोक्त/तार्किक निष्कर्ष दिये हैं, जो निर्मल प्रज्ञा के धारकों के लिए मार्गदर्शक हैं। इस सन्दर्भ में दूसरे अध्याय का सूत्र ५३ एवं पाँचवें अध्याय का सूत्र २१ दृष्टव्य है।

● **पण्डित शान्तिकुमार पाटील, उपप्राचार्य- श्री टोडरमल महाविद्यालय, जयपुर**

तत्त्वार्थसूत्र सम्पूर्ण जैन समाज में सर्वाधिक पठन किया जाने वाला ग्रन्थ होने पर भी सामान्यजनों के साथ अनेक प्रबुद्धजन भी इसके अनेक सूत्रों का वास्तविक अर्थ व प्रयोजन नहीं समझ पाते हैं। कतिपय सूत्रों का तो अन्यथा अभिप्राय ग्रहण करते हैं।

जिनवाणी का तात्पर्य भेदविज्ञान व वीतरागता है। तत्त्ववेत्ता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल की नवीनतम कृति **'तत्त्वार्थमणिप्रदीप'** तत्त्वार्थसूत्र के सूत्रों का सरल-सुबोध अर्थ तो प्रस्तुत करती ही है, उनका आध्यात्मिक बोध कराते हुए आत्महित की प्रेरणा भी प्रदान करती है। अतः निश्चित ही यह कृति उपलब्ध तत्त्वार्थसूत्र की टीकाओं में एक चमकदार मणि की तरह अपना अलग ही प्रकाश बिखेरेगी।

सिद्धभक्ति

8 तृतीय पूजन -डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

जरा एक ऐसा रोग है, जो जीवन को जर-जर कर देता है; यह किसी व्यक्ति पर जरा भी कृपा नहीं करता। जरा को देखकर जरा ग्रस्त लोग ही नहीं, अच्छे-अच्छे जवानों का भी दिल काँप उठता है।

एक अत्यन्त वृद्ध महिला को देखकर, उसके रूप में इस जरा को देखकर महात्मा बुद्ध भी कह उठे थे कि -

देखी मैंने आज जरा।
क्या ऐसी ही हो जावेगी मेरी यशोधरा।।[१]

मैंने आज जर-जर जरा देखी है, चलता-फिरता बुढ़ापा देखा है। क्या एक दिन मेरी पत्नी यशोधरा भी ऐसी ही हो जावेगी ?

एक दिन सभी को बूढ़ा होना ही है। इसप्रकार जर-जर जरा को देखकर वे जगत से विरक्त हो गये थे।

कविवर दौलतरामजी तो यहाँ तक लिखते हैं -

अर्धमृतकसम बूढ़ापनो कैसे रूप लखे आपनो।[२]

यह बुढ़ापा तो अधमरे के समान है, ऐसे बुढ़ापे में अपने आत्मा का स्वरूप कैसे देखा जा सकता है?

इससे बचने की कोई दवा नहीं है, जंत्र-मंत्र नहीं है; एकमात्र मरने पर ही इससे छुटकारा मिल सकता है। पर कोई मरना नहीं चाहता; क्योंकि मरने से तो अधमरे ही अच्छे हैं।

हम चाहे न चाहे, पर हम प्रतिसमय मरने की ओर ही दौड़ रहे हैं। आखिर एक न एक दिन इस निगोड़ी मौत को भी गले तो लगाना ही पड़ेगा। न तो हम बुढ़ापे से ही भाग सकते हैं और न मौत से। आखिर सामना तो दोनों का ही करना है। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसो, अब बरसों लगनेवाले नहीं हैं।

हे भगवान ! आपने दोनों को ही जीत लिया है; अत: अजर-अमर हो गये हैं; इसलिए मैं आपकी शरण में आया हूँ।

यद्यपि देवताओं ने जरा को जीत लिया है; पर भले ही उन्हें अमर कहा जाता हो, पर मरना तो उन्हें भी पड़ता ही है।

देह के जर-जर होने को जरा और देह के वियोग को मरण कहते हैं। हे सिद्ध भगवान ! जब आपने देह का ही त्याग कर दिया, विदेह हो गये, अदेह हो गये तो फिर कैसा बुढ़ापा और कैसी मौत?

सन्त कवि ने आपको यहाँ अजरा-अमरा कहा है। ऐसी खड़ी भाषा में आपको बुलाना अच्छा लगता है क्या ? अरे, वे आपको अजरा-अमरा कहने की जगह अजर-अमर भी तो कह सकते थे।

हाँ, कह सकते थे, अवश्य कह सकते थे; पर अजरा-अमरा कहने में जो नजदीकी है, वह अजर-अमर कहने में थोड़े ही है। लगता है कवि आपसे बहुत नजदीकी अनुभव करते थे, तभी तो ऐसी तू-तड़ाक भाषा का उपयोग करते हैं।

बात यहीं समाप्त नहीं हो गई। आगे भी वे आपसे इसी भाषा में बात करते हैं। अन्यथा अगली ही पंक्ति में आपको अमला-अचला कह कर क्यों पुकारते। अरे, भाई ! यदि वे चाहते तो अमल-अचल भी कह सकते थे; पर नहीं, लगता है कि वे अपनी पर ही उतर आये हैं और कहे जा रहे हैं कि आप अजरा हैं, अमरा हैं, अमला हैं और अचला हैं।

यह संत महाकवि की सखा भाव की भक्ति है; जिसमें भक्त भगवान से मित्रवत् बात करता है।

हिन्दी साहित्य में सखाभाव की भक्ति के लिए महाकवि सूरदासजी प्रसिद्ध हैं।

अजर, अमर और अमल तो अरिहंत भी होते हैं; पर वे अचल नहीं होते। होते तो विहार कैसे करते ?

चार घातिया कर्मों के अभाव होने से वे अमल तो होते हैं, पर चार अघातिया कर्मों के सद्भाव से अचल नहीं होते। यों भी कह सकते हैं कि मोह मल के अभाव से, मिथ्यात्व और राग-द्वेष के अभाव से या मिथ्यात्व और २५ कषायों के अभाव से अरहंत अमल तो हैं, पर अचल नहीं; किन्तु आठों कर्मों के अभाव से आप अमल के साथ-साथ अचल भी हैं। हे सिद्ध भगवन् ! मेरे आदर्श तो एक आप ही हैं।

मैं तो अजर, अमर, अमल और अचल - यह सब एक साथ ही होना चाहता हूँ - ऐसा संत कवि कह रहे हैं।

अब आगामी छन्द में विरोधाभास अलंकार में बात करते हैं।

जब ऐसा लगे ये परस्पर विरुद्ध बातें एक साथ कैसे हो सकती हैं; तब विरोधाभास अलंकार होता है।

वह आगामी छन्द इसप्रकार है -

(कामिनी मोहन)

जय जगतवास तज जगतस्वामी भये,
जय बिना नाम थिर परमनामी भये।
जय कुबुद्धिरूप तजि सुबुद्धिरूपा भये,
जय निषधदोष तज सुगुण भूपा भये।।४।।

हे भगवान ! यद्यपि आप जगतवास को छोड़कर सिद्धशिला पर चले गये हैं; तथापि जगत के स्वामी हो गये हैं। हे सभी सिद्ध भगवान! यद्यपि आप में से किसी का कोई नाम नहीं है; इससे आपको आपके पूर्वभव के नाम से ही संबोधित करना पड़ता है;

१. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त : यशोधरा नामक महाकाव्य
२. छहढाला, पहली ढाल, छन्द १४

तथापि आप जगत में नामी हैं, परमनामी हो गये हैं।

जगत में जिसका नाम बहुत प्रसिद्ध हो जाता है, उसे नामी कहते हैं, पर आप अकेले नामी नहीं, परमनामी हो गये हैं।

हे भगवान ! आपने कुबुद्धियों को छोड़ दिया है और सुबुद्धिरूप हो गये हैं। तात्पर्य यह है कि मिथ्याज्ञान को छोड़कर सम्यग्ज्ञानरूप परिणमित हो गये हैं। आप निषध आदि दोषों को तजकर सद्गुणों के राजा हो गये हो। इसलिए आपकी जय हो, जय हो, जय हो।

ध्यान रहे यहाँ एक छन्द में चार बार जय शब्द आया है। तात्पर्य यह है कि हे सिद्ध भगवान ! आपकी जय हो, जय हो, बारम्बार जय हो।

यह तो पहले ही कहा जा चुका है कि इसमें विरोधाभास अलंकार का प्रयोग हुआ है।

जो व्यक्ति जगत के वास को, आवास को छोड़कर चला गया हो; वह जगत का स्वामी कैसे हो सकता है ? इसप्रकार यहाँ विरोध का आभास हो रहा है, परन्तु बात ऐसी है कि सिद्ध भगवान इस जगत को छोड़कर मुक्ति में चले गये हैं, सिद्धशिला पर विराजमान हो गये हैं; फिर भी यह जगत उन्हें अपना स्वामी मानता है। इसलिए हे भगवन् ! **आप जगत का वास तजकर भी जगत के स्वामी हैं।**

इसीप्रकार सिद्ध दशा में किसी का कोई नाम नहीं होता; बस सभी को सिद्ध भगवान ही कहते हैं। इसका अर्थ यह है कि वहाँ नाम से किसी की पहिचान नहीं होती। फिर भी आप नामी हो गये हैं, परमनामी हो गये हैं। यह विरोधाभास है; क्योंकि जिसका नाम ही न हो, वह नामी कैसे हो सकता है; परन्तु आप जगत में सर्वश्रेष्ठ हैं और सर्वश्रेष्ठ को ही तो परमनामी कहते हैं।

इसप्रकार हे सिद्ध भगवान ! आप जगत के स्वामी हैं, परमनामी हैं, सम्यग्ज्ञानस्वरूप हैं, केवलज्ञान स्वरूप हैं और अपने अनन्तगुणों की समाज के राजा हैं।

पाँचवाँ छन्द इसप्रकार है –

(कामिनी मोहन)

कर्मरिपु नाशकर परम जय पाइए,
लोकत्रयपूरि तुम सुजस घन छाइये।
इन्द्र नागेन्द्र धर शीश तुम पद जजैं,
महा वैरागरस पाग मुनिगण भजैं।।५।।

हे सिद्ध भगवन् ! आपने कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करके सर्वोत्कृष्ट जीत प्राप्त की है। इसलिए तीन लोक में आपके यशरूपी बादल छा गये हैं। इन्द्र और नागेन्द्र आपके चरणों में शीश रखकर आपकी पूजा करते हैं और महावैराग्य रस से पगे हुए मुनिराज आपका भजन करते हैं, आपको भजते हैं।

जगत की जीत क्षणभंगुर होती है, उसे हार में बदलते देर नहीं लगती। अर्द्ध चक्रवर्ती प्रतिनारायण तीन खण्डों को जीतकर अर्द्ध चक्रवर्ती सम्राट बनते हैं; पर वे भी नारायण से हार जाते हैं। रावण भरत क्षेत्र के तीन खण्ड जीतकर अर्द्ध चक्रवर्ती सम्राट बना था, अन्त में राम–लक्ष्मण से हार गया। लोक में जीत और हार तो लगी ही रहती है; पर आपने ऐसी उत्कृष्ट जीत प्राप्त की है जो कभी हार में नहीं बदलेगी। इसलिए यह आपकी जीत, परमजीत है; आपकी जय, परमजय है।

इस छन्द में यह बताया गया है कि ऊर्ध्वलोक के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित रागी इन्द्र, अधोलोक के नागेन्द्र तथा मध्यलोक के सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित वीतरागी मुनिराजों का समूह आपकी पूजा करता है, आपका भजन करता है। रागी इन्द्र–नागेन्द्र पूजा करते हैं और वीतरागी मुनिराज आपका भजन करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि आपकी महिमा तीन लोक में छाई है।

छठवाँ छन्द इसप्रकार है –

(कामिनी मोहन)

विघनवन दहन द्यो अघन घन पौन हो,
सघन गुणरास के वास को भौन हो।
शिवतिय वशकरन मोहिनी मंत्र हो,
काल क्षयकार बेताल के यंत्र हो।।६।।

हे सिद्ध भगवन् ! आप विघ्नरूपी जंगल को जलाने के लिए दावाग्नि के समान हो, पुण्य–पापरूपी घने बादलों को उड़ाने के लिए तूफानी पवन हो, आँधी हो और अत्यन्त सघन अनंत गुणों की राशि को रखने के लिए विशाल भवन हो, मुक्तिरूपी पत्नी को वश में करने के लिए मोहित करनेवाले मंत्र हो, मोहनी मंत्र हो और काल को क्षय करने के लिए, मृत्यु को मारने के लिए बेताल के यंत्र हो।

तात्पर्य यह है कि आप विघ्न विनाशक हो, पुण्य-पाप को क्षय करनेवाले हो, अनन्त गुणों के घर हो, मुक्तिवधु को रिंझाने के लिए मोहनी मंत्र हो और मृत्यु विनाशक यंत्र हो।

जगत में यह प्रसिद्ध है कि **दावाग्नि** भयंकर वनों की दाहक होती है, **आँधी** बादलों को बहा ले जाती है, अच्छी वस्तुएँ **भवन** में सम्हाल के रखी जाती हैं, महिलाओं को वश में करने के **मंत्र** होते हैं और यमराज को वश में करने अर्थात् मृत्यु पर विजय प्राप्त करने के लिए **तंत्र तोटका** होते हैं।

हे सिद्ध भगवन् ! विभिन्न अपेक्षाओं से ये सब आप ही हो।

तात्पर्य यह है कि जितनी भी विपत्तियाँ लोक में हैं, उन सबके निवारक एकमात्र आप ही हो; एक आपको छोड़कर मुझे अन्यत्र कहीं भी नहीं जाना है; क्योंकि **सौ मर्ज की एक दवा एकमात्र आप ही हो।**

(क्रमशः)

2 नवम्बर 2013, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-32 / 2012-14

51वाँ जैन धार्मिक शिक्षण शिविर

चेन्नई (तमिलनाडु) : यहाँ आचार्य कुन्दकुन्द जैन संस्कृति केन्द्र, आचार्य कुन्दकुन्द तत्त्वप्रचार केन्द्र एवं श्री आदि भगवान दिगम्बर जैन मंदिर, आदमबाक्कम के संयुक्त तत्त्वावधान में 51वाँ जैन धार्मिक शिक्षण शिविर दिनांक 11 से 13 अक्टूबर तक आयोजित किया गया। श्री आदि भगवान दिगम्बर जैन मंदिर, आदमबाक्कम में संपन्न इस शिविर में पहली बार तमिल के अतिरिक्त हिन्दी में भी कक्षायें ली गई। वयोवृद्ध विद्वान पण्डित सिंहचन्द्रजी जैन शास्त्री के निर्देशन में पण्डित जम्बूकुमारन जैन शास्त्री, डॉ. उमापति जैन शास्त्री, पण्डित अशोक कुमार जैन शास्त्री, पण्डित नाभिराजन जैन शास्त्री, पण्डित जयकुमार जैन शास्त्री एवं पण्डित विनोदकुमार जैन शास्त्री आदि विद्वानों ने कक्षायें लीं। अंतिम दिवस परीक्षा भी ली गई तथा हिन्दी व तमिल में प्रथम तीन स्थान प्राप्त शिविरार्थियों को अलग-अलग पुरस्कृत भी किया गया।

हार्दिक बधाई

जयपुर (राज.) : यहाँ सी-स्कीम स्थित महावीर स्कूल में **पुरस्कृत शिक्षा फोरम, राजस्थान** द्वारा टोडरमल महाविद्यालय के स्नातक **श्री संजयकुमारजी शाह बांसवाड़ा** को दिनांक 5 सितम्बर को शिक्षक दिवस के अवसर पर **शिक्षाविद् तेजकरण डंडिया स्मृति शिक्षक पुरस्कार** से सम्मानित किया गया। इस अवसर पर श्री शाह को माननीय संस्कृत शिक्षा मंत्री राजस्थान सरकार द्वारा शॉल ओढाकर व 5100/- रुपये का चैक, प्रशस्ति-पत्र एवं स्मृति चिह्न प्रदान कर सम्मानित किया गया।

इस उपलब्धि हेतु टोडरमल महाविद्यालय एवं जैनपथप्रदर्शक परिवार की ओर से हार्दिक बधाई।

(पृष्ठ 4 का शेष...)

बस इसी का नाम वैराग्य है।

वैराग्य में महत्वपूर्ण है आत्म सन्मुखता, अन्तरोन्मुखता, अपने में स्थित हो जाना, पर पदार्थों से (दृष्टि का हट जाना) अपनी दृष्टि हटा लेना, उनसे विमुख हो जाना।

वैराग्य में पर का त्याग मुख्य नहीं है, पर तो छूटा हुआ ही है, उसका ग्रहण तो हुआ ही कब था ?

आकुलता पर के ग्रहण की हो या पर के त्याग की छटपटाहट, दोनों ही गलत है; क्योंकि दृष्टि तो पर पर ही रही न, पर दृष्टि से ओझल कहाँ हुआ?

इच्छा पर के ग्रहण की हो या त्याग की, दोनों ही हालात में तूने अपने आपको पर से पृथक कहाँ माना, दोनों ही स्थितियों में तू अपने आपको पर के ग्रहण और त्याग में सक्षम मानता रहा न ?

त्याग तो इस मान्यता का करना है।

स्व-पर भेदविज्ञानपूर्वक स्व में स्थिति और परिणाम स्वरूप पर पदार्थों के प्रति स्वाभाविक उदासीन वृत्ति ही वैराग्य है।

पुस्तक का विमोचन

(1) जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में शिक्षण शिविर के अवसर पर डॉ. संजीवकुमारजी गोधा द्वारा लिखित काल द्रव्य का स्वरूप एवं षट् काल परिवर्तन व्यवस्था का वर्णन करने वाली **'कालचक्र'** नामक पुस्तक का विमोचन डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के करकमलों से हुआ। प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन अ.भा.दिग.जैन विद्वत्परिषद ट्रस्ट द्वारा किया गया है।

(2) इसी अवसर पर डॉ. वैद्य दीपक जैन द्वारा लिखित द्वितीय पुस्तक **'अहिंसक आहार : स्वास्थ्य का आधार'** का भी विमोचन श्री महेन्द्रकुमारजी पाटनी (अध्यक्ष-राजस्थान जैनसभा) द्वारा किया गया।

इस पुस्तक में जैन श्रावकाचार के अनुरुप जीवनशैली से होने वाले स्वास्थ्य संबंधी लाभ को बताया गया है। द्विदल त्याग, अष्टमी चौदस को हरी त्याग, जैन भक्ष्य पदार्थों में पोषक तत्त्व विवरण आदि प्रकरणों से जैन श्रावकाचार की अनुमोदना की है। यह पुस्तक ब्रह्मचारियों, त्यागी-व्रतियों हेतु नि:शुल्क उपलब्ध है। इसका मूल्य 30 रुपये है। इच्छुक महानुभाव संपर्क करें - डॉ. वैद्य दीपक जैन, सी-115, सावित्री पथ, बापूनगर, जयपुर। मोबा. 09352990108।

सैकेण्डरी स्कूल तक शिक्षार्थ सहायता योजना

ज्ञानोदय चेरिटेबल सोसायटी, नई दिल्ली जैन बच्चों के लिए सैकेण्डरी स्कूल तक शिक्षा जारी रखने हेतु आवश्यक आर्थिक सहायता प्रदान करती है। आवेदन पत्र के लिए निम्न पते पर लिखें -

GYANODAY CHARITABLE SOCIETY
(Regd. No. 40194/2001)
572, ASIAD VILLAGE, NEW DELHI-110049
PH.: 011-26493538/26492386 or 09811449431

श्रीसंघों के कार्यकर्ताओं से निवेदन है कि अपने नगर के योग्य जैन विद्यार्थियों की सहायता हेतु ऊपर लिखे पते पर सम्पर्क करें। सभी जानकारी व सहायता कार्य गुप्त रखे जाते हैं।

प्रकाशन तिथि : 28 अक्टूबर 2013

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **डॉ.संजीवकुमार गोधा**, एम.ए.द्वय (जैनविद्या व तुलनात्मक धर्मदर्शन; इतिहास), नेट, एम.फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी.
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com **फैक्स :** (0141) 2704127